Multidisciplinary International Magazine
(Peer-Reviewed)
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 1.888
www.jankriti.com
Volume 6, Issue 69-70, Jan-Feb 2021

JANKRITI जनकृति

बहु-विषयक अंतरराष्ट्रीय पत्रिका
(विशेषज्ञ समीक्षित)
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 1.888
www.jankriti.com
वर्ष 6, अंक 69-70, जनवरी-फरवरी 2021

दलित कविता की प्रेरणा, प्रवृत्ति और प्रयोजन

डॉ.गंगाधर चाटे
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
अंबिकाबाई जाधव महिला
महाविद्यालय,
वज्रेश्वरी (महाराष्ट्र) मोबाईल
9822740020
ईमेल- gangadharchate20@gmail.com

शोध सारांश

वर्तमान समय की सबसे बड़ी समस्या है- अपनी पहचान को खो देना और सबसे बड़ी चुनौती है- अपनी पहचान को बचाना। संक्रमण के इस दौर में न केवल व्यक्ति ही, बल्कि समाज और साहित्य भी 'पहचान के संकट' से गुजर रहे हैं। समकालीन हिंदी कविता भी धीरे-धीरे अपनी पहचान खोती गई। आज उसका न कोई विशिष्ट नाम है, न चेहरा और न पहचान। किसी सुविधाजनक नाम के अभाव में उसे 'समकालीन कविता' नामकरण से संबोधित किया जाता है, लेकिन 'समकालीन कविता' कहने से न ही उसकी कोई विशेषता सामने आती है और न ही उसकी कोई शख्सियत बनती है। गौरतलब है कि ऐसे दुस्समय में भी 'दलित कविता' ने अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाई है। नब्बे के बाद समकालीन हिंदी कविता विखण्डित होकर जिन धाराओं में प्रवाहमान हुई, उसमें दलित कविता साहित्य की एक प्रधान धारा बनकर उभरी है। 'दलित कविता' की एक अपनी एक अलग विचारधारा है। उसकी अपनी प्रेरणा, प्रवृति और प्रयोजन है, जो मनुष्य में अपनी बुनियादी आवश्यकता की पूर्ति के लिए संघर्ष करने की चेतना जागृत करती है। वह न केवल दलितों के मानवीय हक्कों की माँग तक सीमित रहती है, बल्कि उनकी अस्मिता, आत्मसम्मान, अस्तित्व और पहचान को भी सुनिश्चित एवं सुरक्षित करने की जद्दोजहद करती है। वह एक ओर जहाँ भूख से बेहाल दलितों का संवेदनशील इतिहास लिखती है, तो दूसरी ओर अन्याय-अत्याचार के खिलाफ़ विद्रोह करते हुए विश्व का सबसे बड़ा सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलन खड़ा करती है। वह उन तमाम जड़ सामाजिक मान्यताओं को नकारती है, जो संतुलित विकास में बाधा बन गये है। लोकतान्त्रिक, संवैधानिक और समतामूलक समाज की स्थापना करना ही दलित कवि और कविता का प्रधान लक्ष्य रहा है।

बीज शब्द:

दलित, सवर्ण, भूख, वेदना, विद्रोह, नकार, भेदभाव, वर्ण, जाति, दुर्गति, आदमी, जानवर, लोकतंत्र, अधिकार, छुआछुत, वंचित, उपेक्षित, उत्पीडित, गुलामी, अन्याय, अत्याचार, अमानवीय, संविधान, आरक्षण, समता, हरिजन, ब्राह्मण, प्रेरणा, प्रवृत्ति, प्रयोजन, परिवर्तन, कवि, कविता, यथार्थ, सामजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि।

भूमिका:

महानायक भारतरत्न डॉ.बाबासाहेब आंबेडकर दलित कवि और कविता के प्रेरणा स्रोत रहे है। आप ही से प्रेरणा, ऊर्जा और आवेग लेकर दलित कविता प्रवाहित हुई। दलित कविता का उगम सबसे पहले मराठी साहित्य में हुआ, तत्पश्चात हिंदी साहित्य में दलित कविता लेखन की शुरुआत हुई। सदियों से ही दलित आदमी जी-तोड मेहनत करता रहा है, किंतु विडंबना यह है कि इतिहास या साहित्य में कहीं भी उसका नामोल्लेख नहीं मिलता। उसे जानबूझकर नजरअंदाज किया जाता रहा है। उसे साहित्य के क्षेत्र में 'हाशिए का समाज' यह सम्बोधन मिला है। इस हाशिए के समाज को कविता की मुख्य धारा में लाने में श्रेय दलित कवियों को जाता है। इन कवियों निडरता से कहा कि दलितों की दुर्गति-अधोगति के लिए सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक संरचना को जिम्मेदार है और दलितों को विकास के अवसर नहीं दिये गये है एवं उन्हें हमेशा ही विकास धारा से वंचित रखा गया। कारण केवल इतना रहा है कि दलितों का शूद्र वर्ण में जन्म लेना। जन्म के आधार पर उन्हें अविकसित रख गया है। इसीलिए जन्म आधारित जड़वादी समाज रचना के खिलाफ़ दलित कवि और कविता न केवल खडी होती है, बल्कि दलितों के अधिकार प्राप्ति के लिए सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलन का आगाज भी करती है।

शोध आलेख:

दलित कविता की मूल प्रवृति वेदना, विद्रोह और नकार की रही है। दलित कवियों ने अपनी कविताओं में मूलतः भूख की वेदना का मार्मिक चित्रण किया है। दलित कवि के अनुसार आज़ादी के कई साल बाद भी दलित आदमी रोटी, कपड़ा और मकान से वंचित है। आज भी दलित व्यक्ति रात-दिन मेहनत करके दो वक्त भोजन जुटा नहीं पाता और उसे अधपेट या भूखा सोना पड़ता है। दलित फटे-पुराने कपड़ों से अपने तन को ठँके हुए है। जाड़े, धूप, बारिश से बचने के लिए छत का साया उसके पास नहीं है। फूटपाथ का जीवन जी रहे दलितों को बड़ी संख्या में देखा जा सकता है। दलित कवि मलखान सिंह के लोकप्रिय कविता संग्रह 'सुनो ब्राह्मण' की भूख, छत की तलाश, पूस का एक दिन, कागज का घोडा, मुझे गुस्सा आता है आदि कविताएँ दलित जीवन के इसी यथार्थ को उजागर करती है। कवि ने 'भूख' कविता में भूख से पीड़ित दलित समाज का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। कवि कहते है कि आँख खुलते ही भूख को चौखट पर बैठे देखा। मेरी माँ भूख को आँगन में पसरा देखकर फूट-फूट कर रो रही है। कवि भूख को संबोधित करते है; "भूख! हमारी रात को दर्द/दिन को नासूर बना दिया है तुने/और हमारे वजूद को घूरे तक खींच लाई है तू/अब इस पेशवर सूरत से जीवन्त गरमाहट की उम्मीदें/मृग-मरीचिका ही तो है हमारी"।[1] दलित का इतिहास भूख से बेहाल लोगों का इतिहास रहा है। इस इतिहास को लिखने की हिम्मत किसी इतिहासकार में नहीं थी। दलित कवियों ने भूख के अलिखित इतिहास को अपनी कविता में लाने का साहस किया है। अन्न के साथ कपड़ा भी आदमी की बुनयादी जरूरत है। कवि ने 'फटी बन्डी' कविता में इसका मार्मिक अंकन किया है। मलखान की 'छत की तलाश' कविता दलितों के बेघर होने की दास्तान सुनाई देती है। कवि को पूरा गाँव घूमने के बाद भी सर ढकने के लिए छत नहीं मिला। उसे हिंदू और मुसलमान दोनों ने जगह नहीं दी। दलित लोगों के पास न घर हैं, न मरघट। यह घोर विसंगति है। कवि ने 'पूस का एक दिन' कविता में अलाव के सामने देह सेंक रहे दलितों का प्रतिबिंब शब्दबध्द किया है। कवि लिखते है, "शीत

ढह रहा है/मेरी कनपटियाँ आग सी तप रही है"।[2] स्पष्ट है, सामाजिक व्यवस्था ने दलित व्यक्ति प्राकृतिक जरूरतों को भी पाने में असमर्थ बनाया और उन्हें अपने प्राकृतिक अधिकारों से वंचित रखा गया।

भूख की वेदना यह दलित कविता की अनिवार्य शर्त है। कवि जयप्रकाश कर्दम ने लालटेन, अक्करमाशी इन कविताओं में भूख से बेहाल माँ का चित्रण किया है। कवि कर्दम 'लालटेन' कविता में कहते है कि आर्थिक अभाव के कारण हमारे घर में हफ्तों तक बिना छुकी-भुनी सब्जी भी नहीं बनती थी। उनके घर में नमक के चावल या उबले हुए आलू खाते थे। माँ के लिए तो झूठन भी नहीं बचता था। वह भूखे पेट सो जाती। इसी तरह भूख से पीड़ित माँ का चित्र 'अक्करमासी' कविता में रेखांकित किया है: "भूखी नंगी रह/वह दर-दर की ठोकरें नहीं खाती/दो मुट्ठी अनाज के दानों के लिए/किसी पाटील के घर या खेत में/बेगार करने नहीं"।[3] किसी देश की इससे बडी त्रासदी क्या हो सकती है कि उसमें निवास करनेवाला कोई व्यक्ति या समूह अन्न के अभाव में मर जाये। पहली बार भूख से बिलगते आदमी का चित्रण दलित कविता द्वारा विश्व के सामने लाया गया। दलित समाज सदियों से शोषित एवं उत्पीड़ित रहा है। जयप्रकाश कर्दम जी की किले, दासता, अक्करमासी, ओ नये साल आदि कविताएँ दलित शोषण को उजागर करती है। कवि के अनुसार सवर्णों के किले दलित के परिश्रम, शोषण पर फले-फुलें है। कवि के शब्दों में, "मेरे मुँह का ग्रास/नोंचने आए हैं मुझे/भूखे बाज की मानिंद/अपने नुकिले पंजो से और/डकारते आए हैं। मेरा मांस"।[4] यहाँ दलितों का शोषण कर रहे सवर्णों की पोल खोल दी है। कवि का कहना है कि दलितों की दुर्गति के लिए सामाजिक संरचना जिम्मेदार रही है। इसमें सवर्ण व्यक्ति अधिक धनवान बनता जा रहा है और दलित दिन-प्रतिदिन गरीब हो रहा है। कमजोर दलित को सवर्ण लोगों ने कई दिनों से नौकर, गुलाम या दास बनाया है।

दलित साहित्य की सबसे मूल प्रवृत्ति वेदना ही रही है। कवि ओमप्रकाश वाल्मीकि ने दलितों की भूख की वेदना का मार्मिक अंकन किया है। उनकी मुठ्ठीभर चावल, वह मैं हूँ, बाहर आयेंगे एक दिन, वे भूखे है आदि कविताओं में भूख की वेदना की प्रखर अभिव्यक्ति हुई है। कवि वाल्मीकि अपनी कविता 'मुठ्ठीभर चावल' में कहते है कि दलितों को जीने का अधिकार भी नहीं दिया गया। सुख और प्रणय तो दूर, उन्हें दो वक्त अन्न भी नहीं मिला। कवि अपने पूर्वजों को सम्बोधित करते हुए कहते है, "जब तुम्हें प्रेम करना था/आलिंगन में बाँधकर/अपनी पत्नियों को/तुम तलाशते रहे/मुट्ठी भर चावल/सपने गिरवी रखकर"।[5] कवि वाल्मीकि ने अपनी एक कविता 'वह मैं हूँ' भूख से परेशान बच्चों की रूलाई और भूख में स्वयं को पाया है। कवि भूख से प्रताडित बच्चों के साथ है। दलितों के बच्चों ने दूध, दही और मक्खन का स्वाद कभी नहीं चखा। लेकिन कवि को उम्मींद है कि यह सन्ताप के दिन बीत जायेंगे। बच्चों के लिए अच्छे दिन की कामना करते हुए कवि लिखते है, "ये भूखे-प्यासे बच्चे/बाहर आयेंगे एक दिन/बन्द अँधेरी कोठरियों से/कच्ची माटी की गन्ध/साँसों में भरकर"।[6] यह दलित जीवन का क्रूर यथार्थ है। बावजूद इसके दलितों ने कोई पाशवी कृत्य नहीं किया। कवि कहते है कि "वे भूखे हैं/पर आदमी का मांस नहीं खाते/प्यासे हैं/पर लहू नहीं पीते"।[7] स्पष्ट है कि दलितों को अपने भूख और प्यास से संघर्ष करना पड़ा है। उन्हें अपनी बुनियादी जरूरतों को भी पूरा नहीं करने दिया गया। दुनिया के इतिहास में किसी मनुष्य के साथ शायद ही इतनी अमानवीयता हुई होगी!

दलित कविता में जड़ सामाजिक संरचना के प्रति विद्रोह की भावना है। दलितों के मन में सवर्ण को प्रति घृणा, तिरस्कार और आक्रोश की भावना हमेशा से रही है। मलखान सिंह की 'सुनो ब्राह्मण' कविता इसका

सटीक उदाहरण है। प्रस्तुत कविता में कवि ने वर्णव्यवस्था को खुली चुनौती दी है। ब्राह्मण जो वर्णव्यवस्था में सर्वोच्च स्थान पर विराजमान है उसको ललकारते हुए कवि कहते है, तुम हमारी घृणा करते है। तुम्हें हमारे पसीने की बू आती है। तो तुम अपनी जननी को हमारी जननी की तरह मैला कमाने भेजो। तुम भी मेरे साथ चमड़ा पकाने आ जाओ। अपने बेटे को मेरे बेटे के साथ दिहाड़ी की खोज में भेजो। अपनी बेटी को हमारी बेटी के साथ मुखिया के खेत में कटाई करने भेजो। इसके बाद ही तुम जीवन की गंध को जान पाओगे। कवि के अनुसार दलितों के पिछड़ेपन कारण वर्णव्यवस्था और ब्राह्मण रहा है। ब्राह्मण के जन्म से ही दलितों की गुलामी शुरू हुई। कवि का मानना है कि वर्णव्यवस्था के खात्मे से ही दलितों की गुलामी खत्म होगी। इसीलिए वर्णव्यवस्था को उखाड फेंकने का आवाहन कवि ने प्रस्तुत कविता संग्रह में किया है। कवि सवर्ण को कहते है कि अब आगे दलित तुम्हारा बोज ढोने के लिए तैयार नहीं है। सभी दलित मिलकर तुम्हारे खिलाफ़ विद्रोह की तैयारी कर रहे है। एकलव्य ने अपने तीरों को आग में तपा लिया है। यही एक परिवर्तन का माध्यम है।

विद्रोह ही दलित साहित्य की मुख्य प्रवृत्ति है। जब सहनशीलता की सीमा समाप्त होती है, तब विद्रोह की शुरूआत होती है। कवि ओमप्रकाश वाल्मीकि अन्याय, अत्याचार, शोषण, विषमता के खिलाफ विद्रोह करने के लिए दलितों को प्रेरित करते है। वे प्रस्थापित जड़ व्यवस्था को चुनौती देते है। आपके 'बस्स! बहुत हो चूका' कविता संग्रह की पेड़, हवा, धूप और धरती, वे भयभीत है, युद्ध, बस्स! बहुत हो चुका, बसन्त को मरे तो युग बीत गये, सत्य की परिभाषा आदि कविताओं में विद्रोही स्वर सुनाई देता है। वाल्मीकि की 'पेड़' कविता में पत्तों का पेड़ के खिलाफ विद्रोह है। कवि पेड़ को चेतावनी दे रहे है कि तुम्हारी पहचान हरे पत्तों के कारण है। तुम उस समय तक पेड़ कहलाओगे, जब तक हरे पत्ते तुम्हारी टहनियों पर हिल रहे है। पत्तों के बिना पेड़ ठूँठ कहलायेगा। यह प्रतीकात्मक है। इसे दलितों का सवर्णों से प्रतिरोध समझ सकते है। कवि ने 'हवा, धूप और धरती' कविता में दलितों की चेतना जगाने का कार्य किया है। कवि कहते है कि तुम्हारे साथ हवा, धूप और धरती है। इसी से तुम लढ़ सकते हो। कवि यहाँ दलितों को अपनी ताकत का अहसास कराते हैं। वाल्मीकि की 'वे भयभीत हैं' कविता भी विद्रोह की श्रृंखला में आती है। कवि ने व्यवस्था को दलितों से घबराते हुए पाया है। कवि के अनुसार वे भयभीत है, क्योंकि उन्होंने मेरी हाथों में किताब देखी है। उन्होंने मुझे आँधी तूफान के रूप में देखा है। उनका बरसों का किला ध्वंस होते हुए वे देख रहे है। अब उनकी सुरक्षा खतरे में है। यहाँ कवि किताबों की ताकत को समझ गया है। यह किताबें विद्रोह में बारूद का काम कर सकते है। 'बस्स! बहुत हो चुका' यह संग्रह की केन्द्रीय कविता है। यह वह बिन्दू है जहाँ से शोषण के खिलाफ जंग का ऐलान है। कवि के अनुसार दलित सदियों से अन्याय-अत्याचार सहता आ रहा है, लेकिन अब बहुत हो चुका है। आगे हमें इनके खिलाफ़ विद्रोह करना है। कवि के शब्दों में, "बस्स!/बहुत हो चुका/चुप रहना/निरर्थक पड़े पत्थर/अब काम आयेंगे सन्तप्त जनों के"।[8] यहाँ कवि के इरादे बिलकुल स्पष्ट है। उन्होंने युध्द की तैयारी मन में कर ली है। उनकी 'युद्ध' कविता इसी का संकेत करती है। कवि के अनुसार कमजोर स्थितियों में युध्द लढा नहीं जा सकता है। सामनेवाला यदि आँधी बनकर तुम्हारे बालू के घर पर हमला कर दे, तो उनका विरोध कैसे करोगे। ऐसे में कवि को बंद, हडताल और नारे बेमानी लगते है। इसीलिए युध्द की तैयारी करनी चाहिए। कवि ने 'बसन्त को मरे युग बीत गये' और 'सत्य की परिभाषा' कविता में भी विद्रोह को वाणी दी है। इन कविताओं में कवि ने व्यवस्था को चुनौती दी है।

दलित कविता में नकार की प्रवृत्ति पाई जाती है। मलखान सिंह की आखिरी जंग, छत की तलाश, हमारे गाँव में, मैं निराश नहीं हूँ, सुनो ब्राह्मण जैसी अधिकांश कविताओं का मूल स्वर यहीं है। कवि ने 'आखिरी जंग' कविता में ईश्वर को नकारा है। कवि को ईश्वर भी शैतान का वंशज लगता है। इसीलिए गाँव के मुखिया का शक्ल ईश्वर से मिलती-जुलती है। कवि को लगता है कि दलितों की लड़ाई में ईश्वर हमारा साथ नहीं देंगे। यह युध्द दलितों को अपने ही बाजुओं से जीतना होगा। 'मैं निराश नहीं हूँ मित्र' कविता में कवि ने दलितों के भीतर के प्रतिरोध को बखूबी महसूस किया है। कवि कहते है,"गाँव की कीच भरी गलियों में/मौसम के खिलाफ उठती हुई आवाजें/मुझे साफ सुनाई दे रही है"।[9] यह व्यवस्था की संरचना को तोड़ने के संकेत है। दलितों में यह चेतना जगने लगी है। इसीलिए कवि स्पष्ट और बेबाक शब्दों में लिखते है, "चौरस जमीं पर/बन्धुत्व का संगीत होगा/मेहनतकश हाथ में/ सब तंत्र होगा/बाजुओं में/ दिग्विजय का जोश होगा"।[10] जाहिर है कि मलखान सिंह की कविता रूढ़िवादी सामाजिक संरचना को नकारती है।

दलित कविता की एक प्रमुख विशेषता है- नकार। जयप्रकाश कर्दम की अधिकांश कविता जन्म नकार की प्रवृत्ति से हुआ है। कवि ने धर्म, वर्ण, जाति, वंश आदि पर आधारित समाज व्यवस्था को नकारा है। कवि कर्दम अपनी कविता 'तुमने कहा' में ईश्वर एवं स्वर्ग की कल्पना को नकारते है। कवि बाह्मणवादी व्यवस्था को संबोधित करते हुए कहते है कि तुमने हमें बताया ईश्वर परम पद है। हरिजन ईश्वर को प्रिय है। तुमने हमारे लिए वैभव और सम्पन्नता का जहर पी लिया। कवि आगे व्यंग्यात्मक शैली में कहते है कि अब हम तुम्हें और जहर नहीं पीने देंगे। कवि ने 'मेरी चाह' कविता में हिन्दू विचारधारा को नकारा है। कवि कहते है कि निष्काम कर्म की अफीम से मेरी चेतना को कुंद कर दिया है। मैं निस्तोज और निष्प्रभाव हो गया हूँ। कर्दम जी अपनी एक कविता 'शुक्र है तू नहीं है' कविता में ईश्वर के अस्तित्व को नकारते है। कवि ईश्वर को कहते है कि तू ही मेरे शोषण और अत्याचार का कारण है, क्योंकि तेरी इच्छा के बिना यहाँ पत्ता तक नहीं हिलता। कवि ने ईश्वर की आलोचना करते हुए लिखा है, "शुक्र है तू कहीं नहीं है/केवल धर्म के धन्धे का/एक ट्रेड-नेम है"।[11] इससे बड़ी विडम्बना क्या हो सकती है कि धर्म का उपयोग पुरोहित खाने-कमाने के लिए करें। कवि का मानना है कि दलितों की दुर्गति का कारण हिन्दू धर्मग्रंथों में है। इसीलिए कवि हिन्दू धर्मग्रंथों को नष्ट करना चाहते है। कवि के अनुसार यह धर्मग्रंथ जब तक है, तब तक समाज से जाति व्यवस्था, छुआछूत और वर्णव्यवस्था खत्म नहीं होगी। कवि कहते है कि इन धर्मग्रन्थों को आग लगानी होगी, तभी समाज में प्रगति के रास्ते खुल जायेंगे। इस तरह दलित कविता में नकार की प्रवृत्ति प्रधान रही है।

दलित साहित्य हिंदू संस्कृति एवं परम्परा-रूढ़ियों को नकारता है, जिसने दलितों की दुर्गति की है। हिन्दू वर्णव्यवस्था में जन्म के आधारपर व्यक्ति का विभाजन किया है। इसमें ब्राह्मण सबसे शिखर पर है और शूद्र सबसे नीचले पायदान पर। शूद्र अर्थात दलित का व्यवसाय भी जन्म पर आधारित है। उनके विकास के सभी अवसर छीने गये है। दलित को सवर्ण ने बड़ी चालाखी से अविकसित रखा गया है। अब दलित इस बात को भलीभाँति समझ रहे है। इसीलिए उसने जन्म आधारित व्यवसाय को नकारा है। दलित कविता धर्म, ईश्वर, पुनर्जन्म, पूजा की विधि, धर्मग्रंथ आदि को नकारती है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की अधिकांश कविता में नकार की प्रवृत्ति पाई जाती है। कवि ने अपनी कविता 'शायद आप जानते हों' में हिन्दू संस्कृति की तीखी आलोचना की है। कवि हिन्दू संस्कृति की अनिष्ट प्रथाओं को उजागर करते है। कवि कहते है कि यज्ञों में पशुओं की बलि किस संस्कृति में चढ़ाई जाती है। मैं नही जानता, हो सकता है आपको पता हो। कवि हिन्दू संस्कृति की भेदभावमूलक नीति का पर्दाफाश करते है,"चूहडे या डोम की आत्मा/ब्रह्म का अंश

क्यों नहीं है/मैं नहीं जानता/शायद आप जानते हो!"।[12] कवि के अनुसार यह संस्कृति दलितों के लिए खतरनाक है। कवि ने 'पण्डित का चेहरा' कविता में वर्णव्यवस्था को नकारा है। वर्णव्यवस्था में पंडित ज्ञान दान का कार्य करता है, लेकिन वह ज्ञान का उपयोग अपने निजी स्वार्थ के लिए करता है। उसने पोथियों का सही अर्थ कभी भी नहीं बताया। कवि अपने गाँव के पंडित का चेहरा याद कर रहे है, पर वह याद नहीं आ रहा है। कवि का भविष्य जानने के लिए माँ उस पण्डित के पास गई, लेकिन उसने माँ को डाँटकर भगा दिया। कवि पण्डित की वह पोथी ढूँढ रहे है, जिसमें वे अपना नाम लिखा है या नहीं यह देखना चाहता है। संक्षेप में, कवि ने ज्ञान पर वर्चस्व रखे हुए पण्डितों की पोल खोल दी है। कवि ने हिंदू संस्कृति को 'मुर्दा संस्कृति' कहा है। कवि के अनुसार इस संस्कृति में तपस्वी की हत्या पर देवताओं ने पुष्प वर्षा की थी। कवि ऐसी संस्कृति को प्रश्नांकित करते है। कवि को वर्णव्यवस्था हिंसा की समर्थक लगती है। वह धर्म और मजहब के नाम दंगे करवाती है। कवि के शब्दों में, "हाँ, सचमुच तुम सहिष्णु हो। जब दंगों में मारे जाते हैं/अब्दुल और कासिम/कल्लू और बिरजू/तब तुम सत्यनारायण की कथा सुनते हुए/भूल जाते हो अखबार पढ़ना/पूजते हो गाँधी के हत्यारे को/तोड़ते हो इबादतगाह झुण्ड बनकर"।[13] यह वास्तविकता है। धर्म का उपयोग अपनी जरूरतों के अनुसार पण्डित-पुरोहित वर्ग करवाता है। कवि वाल्मीकि ने 'तुम्हारी गौरवगाथा' कविता में हिन्दू संस्कृति के प्रति आनास्था, असंतोष और परायापन व्यक्त किया है। हिन्दू देवी-देवताओं की मूर्ति के प्रति भी कवि के मन में आस्था उत्पन्न नहीं होती, जबकि वह मूर्तियाँ दलितों ने अपने हाथों से बनाई है। कवि सोचते है कि हिन्दूओं के देवता अन्याय को देखकर जागृत क्यों नहीं होते है। कवि को मंजूर नहीं है कि बच्चों के हिस्से का दूध मूर्तियों पर बहाये। ऐसी प्रथाओं का कवि विरोध करते है। कवि ओमप्रकाश वाल्मीकि ने 'वह दिन कब आयेगा' कविता में जातीय श्रेष्ठता को नकारा है। कवि कहते है कि हिन्दू धर्म में जन्म के आधारपर व्यक्ति को उँच-निम्न माना जाता है। माँ अछूत है, इसीलिए उससे जन्म लेनेवाले बच्चें भी अछूत है। कवि यह नहीं मानते कि बामनी ही बामन को जन्म देती है। कवि कहते है कि शम्बूक, एकलव्य और कर्ण वर्णव्यवस्था के शिकार हुए है। इसतरह कवि वाल्मीकि वर्णव्यवस्था की असलियत उजागर की है। कवि ऐसी व्यवस्था या संरचना को नकारते है, जो अपने धर्म के लोगों को विकास से दूर रखे।

दलित कविता का प्रयोजन भेदभावमूलक व्यवस्था का अंत करके सामजिक समता की स्थापना करना रहा है। दलित कवि मलखान सिंह दलित-शोषित आदमी के चौतरफा विजय का स्वप्न देख रहे है। दलितों के राज्य में सामाजिक-आर्थिक समता होगी। लोगों में सद्भावना होगी। कोई भी शोषित, उत्पीड़ित और दुखी नहीं होगा। इसमें सब समान होगें। इसीलिए यह सामाजिक समता का आंदोलन है। इस आंदोलन को आगे बढ़ाने में दलित कवि और कविता की भूमिका अत्याधिक महत्त्वपूर्ण रही है। जयप्रकाश कर्दम की कविता सामाजिक समता का पुरजोर समर्थन करती है। इस दृष्टि से 'गूंगा नहीं था मैं' यह कविता विशेष उल्लेखनीय हैं। इसमें दलित छात्रों के दुख की अभिव्यक्ति हुई है। स्कूल में दलित छात्रों को सवर्ण छात्रों द्वारा बहुत बार मार खानी पड़ता है। परिणामस्वरूप दलित छात्र स्कूल में जाना नहीं चाहते। कवि का कहना है कि दलितों की दुर्गति के लिए सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना जिम्मेदार है। इसमें सवर्ण व्यक्ति अधिक धनवान बनता जा रहा है और दलित दिन-प्रतिदिन गरीब हो रहा है। कमजोर दलित को सवर्ण लोगों ने कई दिनों से नौकर, गुलाम या दास बनाया है। दलित को गुलाम बनाने के लिए बल, धन, ज्ञान, धर्म आदि को हथियार बनाया गया। कवि के अनुसार हिन्दुओं ने दलितों को युध्द में पराजित होने पर गुलाम बनाया गया। दलित तब से लेकर आज तक सवर्णों की गुलामी कर रहे है। इसका सटीक विवरण 'दासता' कविता में कवि ने किया है।

कवि कहते है कि अंग्रेजों ने हिन्दुयों को पराजित किया, किंतु हिन्दुओं को हमेशा के लिए गुलाम नहीं बनाया। वे हृदयहीन नहीं थे, लेकिन हिन्दू हृदयहीन है। उन्होंने दलितों को बरसों से गुलाम बनाकर रखा है। कवि को अपने बाप का नाम नहीं मिला। इसी तरह 'ओ नये साल' कविता में दलितों पर हुए जुल्म की दास्तान सुनाई देती है। दलित आदमी भेदभाव का शिकार होता रहा है। उसे जन्म के आधार पर निम्न वर्ग का समझा जाता है और वर्णव्यवस्था में सबसे निचले पायदान पर रखा गया है। जयप्रकाश कर्दम ने अपनी कविता 'वर्णवाद का पहाड़ा' में इस कविता में तथाकथित भेदभाव को दर्शाया है। प्रस्तुत कविता में मास्टर जी के दोहरे व्यवहार का पर्दाफाश किया गया है। मास्टर जी सवर्ण और दलित छात्रों के यह दो भेद करते थे। उन्होंने दलित छात्रों को पढ़ाया, किंतु लोटे में पानी भरने नहीं दिया। वे केवल सवर्ण छात्रों को पानी भरने देते थे। विडम्बना है कि शिक्षा का पाठ पढ़ाने वाले मास्टर जी की कथनी और करनी में अंतर है। मास्टर जी के चरित्र के माध्यम से कवि कहते है कि सामाजिक समता का पाठ पढ़ाना आसान काम है, पर समता का आचरण करना मुश्किल है। कवि जयप्रकाश कर्दम ने अपनी 'अस्वीकृति' कविता में जाति के आधार पर किया जानेवाला भेदभाव को रेखांकित किया है। कवि ने प्रेमचंद कृत 'गोदान' की सिलिया को संबोधित करते हुए वास्तविकता का प्रतिपादित किया है। कवि सिलिया को समझा रहे है कि मातादीन की बातों में कभी मत आना। वह तेरी भावनाओं के साथ खेलकर तेरा शरीर शोषण करेगा। वह तुझे रखैल बनायेगा, दुल्हन कभी नहीं। यहाँ जातीय भेदभाव यथार्थ प्रकट हुआ है। कर्दम ने 'अक्करमासी' कविता में भी उँच-निम्न के भेदभाव का वर्णन किया है। कवि के अनुसार मेरे अक्करमासी होने के पीछे मेरी माँ की विवशता रही। मैं पाटील की औलाद हूँ, लेकिन उसने मुझे बाप का नाम नहीं दिया। जाहिर है कि सामाजिक भेदभाव दलितों की दुर्गति के लिए जिम्मेदार है। कवि ने भेदभाव के शिकार दलित जीवन का सटीक एवं मार्मिक चित्रण अपनी कविताओं में किया है। भारतीय संविधान में समाज में फैली असमानता को दूर करने के लिए विशेष प्रावधान किये गये हैं। इसमें अविकसित एवं पिछडे दलितों को विकास की धारा में लाने के लिए भरकस प्रयास किये हैं। दलितों को विकास के सुअवसर देने के लिए आरक्षण जैसे विशेष अधिकार दिये गये है। लेकिन सवर्णों को दलितों के आरक्षण से परहेज है। उन्हें दलितों को आरक्षण कोटा में मिले एडमिशन रास नहीं आते। उनके लिए रिश्वत देकर एडमिशन लेना उचित है, किंतु आरक्षण में मिला हुआ एडमिशन नहीं। कवि जयप्रकाश कर्दम ने 'मेरे अधिकार कहाँ है?' कविता में सामाजिक-आर्थिक विषमता का चित्रण किया है। कवि कहते है कि एक ओर सवर्ण बंगलों में रहते है, दूध-मलाई खाते है तो दूसरी ओर दलित झोपडी में रहते है। वे दो वक्त की रोटी के लिए मुँहताज है। ऐसी स्थिति में कवि ने सवाल उठाया है- "उत्पीडन की जंजीरों में/यूँ कसा-फंसा सदियों से मैं/ना मुर्दा हूँ न ही जी सकता/मेरे मौलिक अधिकार कहाँ है?"।[14] इसी श्रृंखला में कर्दम की 'आज का रैदास' कविता को रखा जा सकता है। प्रस्तुत कविता में अभावग्रस्त बाप-बेटा है। रैदास बाप है। वह चमार है। उसका बेटा पूसन है। उसका नाम सरकारी स्कूल में दर्ज है, किंतु किताब, कापी और कपडे के अभाव में स्कूल नहीं जा पाता। पूसन जब अमीर बच्चों को पब्लिक स्कूलों में सज-धज कर जाते देखता है, तो अपने पिता से मुझे भी पब्लिक स्कूल में भेजने की बात करता है। पिता रैदास यह सुनकर दुखी होता है। यहाँ सामाजिक विषमता का विदारक चित्रण है। कवि विषमता के खिलाफ खडा होता है। वह विषमता को समाप्त करके समता को स्थापित करना चाहता है। निश्चित समाज में विषमता की खाई बढ़ गई है। वर्तमान समाज में जहाँ एक ओर सम्पन्नता हैं, तो वहीं दूसरी ओर अभावग्रस्तता है। सामाजिक संतुलन बिगडता जा रहा है। यह किसी राष्ट्र

के लिए खतरनाक है। इसीलिए कवि समता का पुरस्कार करते है। कवि अभावग्रस्त दलितों के पक्षधर है। कवि ने उनके जीने के अधिकार की मांग की है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि विपरीत परिस्थितियों में भी परिवर्तन की उम्मींद रखते है। वे उदास और हताश होकर हार नहीं मानते। वे परिवर्तन में विश्वास रखते है। उनकी कविता में दलितों में चेतना भरने का कार्य किया है। उनकी बाहर आयेंगे एक दिन, कर्फ्यू के बावजूद ,वह मैं हूँ, आदिम रूप, वह दिन कब आयेगा आदि कविताओं में परिवर्तन को समर्थन दिया गया है। दलितों में भी जीवन जीने की प्रबल प्रेरणा है। वह लाख विपत्तियों में भी जीवन को जीने की कला सीख गया है। हम कह सकते है कि कवि ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित चेतना के कवि है। उन्होंने दलित काव्य आंदोलन को आगे बढ़ाने में अहम भूमिका निभाई है। वे केवल दलित जीवन के दुख-दर्द, शोषण-पीड़ा, वेदना की अभिव्यक्ति नहीं करते, बल्कि सामाजिक परिवर्तन के लिए लोगों में चेतना जगाने का भरकस कार्य करते है। सामाजिक विषमता के खिलाफ वे निर्भयता से खड़े होते है। सामाजिक समता को प्रस्थापित करना ही उनके जीवन का लक्ष्य है। सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलन के लिए उनकी कविता समर्पित है।

कुलमिलाकर कहा जा सकता है कि दलित कविता हिंदी साहित्य की एक अनूठी उपलब्धि है। इसमें न केवल समाज के एक बहुत बड़े वर्ग के दुख, दर्द और पीड़ा की अभिव्यक्ति मिलती है, बल्कि उनके हक़ की लड़ाई भी है। दलित कविता सदियों से उत्पीड़ित दलित समाज की मूक वेदना भी है और उनके विद्रोही तेवर की आवाज भी। वह उस व्यवस्था को नकारती है, जो दलितों की दुर्दशा का कारण बनी हुई है। वह सामाजिक समता के लिए एक सांस्कृतिक आंदोलन को खड़ी करती है और संवैधानिक मूल्यों की स्थापना करने के लिए जद्दोजहद भी।

निष्कर्ष:

1. आज़ादी के कई सालों बाद भी दलित समाज विकास की मुख्य धारा दूर रहा है और अपने मूलभूत अधिकारों से वंचित भी रहा है। सत्ताधारी उसे विकास की धारा में सामिल होने के पर्याप्त सुअवसर नहीं दिए गए है।
2. नब्बे के बाद पहली बार हाशिये के दलित जीवन को साहित्य के क्षेत्र में स्थान मिला है। समकालीन हिंदी कविता की 'दलित काव्यधारा' ने सदियों से उपेक्षित दलित जीवन को अपनी अंतर्वस्तु बनाया और दलितों की वेदनाओं अभिव्यक्ति मिली।
3. डॉ.बाबासाहेब आंबेडकर दलित कविता की प्रेरणा बन गए है। उन्हीं से प्रेरणा, आवेग और शक्ति पाकर दलित कविता का उगम हुआ और आगे चलकर इस धारा ने विशाल स्वरुप धारण किया है। दलित कविता के साथ डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर की विचारधारा जुड़ी है, जो सामाजिक समता पर आधारित है।
4. दलित कविता की मूल प्रवृत्ति वेदना, विद्रोह और नकार है। दलित कवि भूख की वेदना की संवेदनशील अभिव्यक्ति करते है। दलित कवियों ने अपने भोगे हुए अनुभव से इस अभिव्यक्ति को और अधिक सजीव, जीवंत और मर्मस्पर्शी बनाया है।
5. दलित कविता में अन्यायकारी, दमनकारी और शोषणवादी सामाजिक व्यवस्था के प्रति विद्रोह की भावना है। वह उन तमाम तत्वों का पुरजोर विरोध करती है, जो आदमी के साथ जानवरों से गया-

गुजरा व्यवहार करते है। दलित कवि अपनी कविताओं में ऐसी अमानवीय व्यवस्था को उखाड़ फेंकने का आवाहन है।

6. दलित कविता हिंदू संस्कृति एवं परम्परा-रूढ़ियों को नकारती है, जिसने दलितों की दुर्गति की है। हिन्दू वर्णव्यवस्था में जन्म के आधारपर व्यक्ति का विभाजन किया है और इसमें दलितों को सबसे नीचले पायदान को रखकर उनसे विकास के सभी सुअवसर छीने गए है। इसीलिए दलित कवि वर्णव्यवस्था को नकारते हुए दलितों के मानवीय अधिकारों की माँग करती है।

7. दलित कविता का मुख्य प्रयोजन सामजिक समता की स्थापना करना रहा है। इसमें 'दलित राज्य' की परिकल्पना है, जिसमें सामाजिक-आर्थिक समता होगी और लोगों में सद्भावना होगी। कोई भी शोषित, उत्पीड़ित और दुखी नहीं होगा और सब समान होगें। इसीलिए कहा जा सकता है कि दलित कविता यह एक सामाजिक समता का आंदोलन है।

संदर्भ संकेत :

[1] मलखान सिंह, सुनो ब्राह्मण, पृष्ठ.24, बोधिसत्व प्रकाशन, रामपुर, प्रथम संस्करण 1996
[2] मलखान सिंह, सुनो ब्राह्मण, पृष्ठ.19, बोधिसत्व प्रकाशन, रामपुर, प्रथम संस्करण 1996
[3] जयप्रकाश कर्दम, गूंगा नहीं था मैं, पृष्ठ.40, विकल्प प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1999
[4] जयप्रकाश कर्दम, गूंगा नहीं था मैं, पृष्ठ.14, विकल्प प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1999
[5] ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चूका, पृष्ठ.15, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1997
[6] ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चूका, पृष्ठ.21, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1997
[7] ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चूका, पृष्ठ.77, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1997
[8] ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चूका, पृष्ठ.80, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1997
[9] मलखान सिंह, सुनो ब्राह्मण, पृष्ठ.42, बोधिसत्व प्रकाशन, रामपुर, प्रथम संस्करण 1996
[10] मलखान सिंह, सुनो ब्राह्मण, पृष्ठ.30, बोधिसत्व प्रकाशन, रामपुर, प्रथम संस्करण 1996
[11] जयप्रकाश कर्दम, गूंगा नहीं था मैं, पृष्ठ.32, विकल्प प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1999
[12] ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चूका, पृष्ठ.13, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1997
[13] ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चूका, पृष्ठ.51, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1997
[14] जयप्रकाश कर्दम, गूंगा नहीं था मैं, पृष्ठ.42, विकल्प प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1999